रहंताणं

द्धाणं

यरियाणं

ज्झायाणं

व्वसाहूणं

मेष्ठी की शरण लो, मिले भवों से त्राण ।
पग पर मगल मिले, क्षण क्षण हो कल्याण ॥

स्कृतिक पर्व होली पर,
हार्दिक शुभकामनाएं ।

मेष्ठी की शरण लो, मिले भवों से त्राण ।
रग पर मगल मिले, क्षण क्षण हो कल्याण ॥

स्फूर्तिक पर्व होली पर,
हार्दिक शुभकामनाएं ।

११ वां रत्न

चिन्तन के मुक्त स्वर

★

व्याय अमर मुनि

मेष्ठी की शरण लो, मिले भवों से
पग पर मगल मिले, क्षण क्षण हो क

स्कृतिक पर्व होली प
हार्दिक शुभकामनाएं

पुस्तक
चिन्तन के मुक्त स्वर
★
रचयिता
उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्द्रजी महाराज
★
सम्पादक
श्री अखिलेश मुनिजी महाराज
★
संस्करण
प्रथम, २२ फरवरी १९७० ई०
★
मूल्य
दो रुपए
★
मुद्रक
राज प्रिण्टर्स, राजामण्डी, आगरा-२
★
प्रकाशक
सन्मति ज्ञानपीठ,
[जैन विद्या का शोध संस्थान]
लोहामण्डी, आगरा-२

प्रकाशकीय

मुक्तक मे कवि के अनुभूति-सम्पृक्त हृदय की सच्ची झलक होती है। वह जो कुछ भी, अपने जीवन मे भोग कर प्राप्त करता है, उसका भोगा हुआ जीवन ही, चाहे वह स्वय के जीवन से सम्बद्ध हो अथवा समष्टि-जीवन से उसके काव्य मे पूर्ण रूप से विम्बित होता है। उसके अन्तरतल के भावनाओ की गहराई ही उसकी काव्य-माधुरी का मोहक बाना बनकर चित्रित होती है।

श्रद्धेय कविश्रीजी एक तत्त्व-चिंतक के साथ-ही-साथ एक मरम कवि भी हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि इनके काव्य मे लहरो पर उतारने वाली क्षणिक सासारिक भावनाओ का मगुम्फन न होकर जीवन-जगत् का स्वस्थ चिंतन होता है। एक तरह से शाश्वत सत्य का उद्घोषण होता है।

'चिंतन के मुक्त स्वर' कविश्रीजी की इन्ही शाश्वत भावनापरक मुक्तको का सकलन है। इसमे, क्या धार्मिक, क्या अध्यात्मिक, क्या सास्कृतिक, क्या नैतिक, क्या सामाजिक एव क्या राजनीतिक—सभी पहलुओ पर सम्यक् चिंतन प्रस्तुत है। श्रद्धेय कविश्रीजी ने, अपनी साधना के बीस वर्षों मे, जिन-जिन पहलुओ पर अपना उन्मुक्त चिंतन किया है, उसका प्रतिनिधि सकलन,

'चिंतन के मुक्त स्वर' को कहे तो कोई अत्युक्ति न होगी। जो व्यक्ति कविश्रीजी के चिंतक, कवि, साधक, तपस्वी एवं एक महान् आत्मा—चाहे जिस रूप का भी दर्शन करना चाहेंगे, उनके लिए यह पुस्तक एक सफल गाइड (निदेशक) का काम करेगी। यह पुस्तक कविश्रीजी के विचारों का सच्चा प्रतिबिम्ब है, एक निर्मल दर्पण है।

इस अलभ्य कृति को प्रकाशित करके श्रद्धेय कविश्रीजी की दीक्षा स्वर्ण-जयंती के पुनीत अवसर पर उन्हीं के श्री चरणों में सभक्ति अर्पित करते हुए हम महान् गौरव की अनुभूति पा रहे हैं।

आशा है, सहृदय पाठक इस पुस्तक का हृदय से स्वागत कर जीवन के उज्ज्वल पथ पर प्रयाण करने की क्षमता अर्जित करेंगे।

मंत्री
सन्मति ज्ञानपीठ
[जैन विद्या का शोध संस्थान]
नाहामण्डी, आगरा-२

गणतंत्र दिवस,
सन् १९७० ई०

प्राक्कथन

काव्य कवि हृदय की उर्वर भाव-भूमि का प्रतिफलन है। कवि का हृदय इतना सरल, बालसुलभ भोलापन लिए हुए इतना सवेदन शील होता है कि ससार की प्रत्येक धडकनो को अपनी भावना-रागिनी मे सँजोकर, जग-जीवन के बीच बडे ही साम्वेदनिक परिवेश मे प्रस्तुत करता है। इस क्रम मे कभी तो उसकी स्वय की आत्मानुभूत भावनाएँ विश्व की भावनाओ का स्वरूप लिए होती है, तो कभी विश्व की असख्य-असख्य भाव-लहरियाँ कवि की एक भावना मे एक मूच्छनामय आवेग लिए विलय होती-सी अपनी झाँकी प्रस्तुत करती है। ता पर्य यह कि कवि की भावनाएँ भावना की सामान्य भूमि पर उतर कर विश्व की सुख-दुख, हर्ष-शोक, अकुलाहट-आह्लाद, बद्ध-मुक्त—भावना की जितनी भी दिशाएँ है, सब को समान रूप मे धूपछाही रूप मे छिटकती-निखरती स्वरूप पाती होती है। और, कवि-जीवन की सार्थकता भी इसी मे है।

'चिंतन के मुक्त स्वर' को कहे तो कोई अत्युक्ति न होगी। जो व्यक्ति कविश्रीजी के चिंतक, कवि, साधक, तपस्वी एव एक महान् आत्मा—चाहे जिस रूप का भी दर्शन करना चाहेगे, उनके लिए यह पुस्तक एक सफल गाइड (निदेशक) का काम करेगी। यह पुस्तक कविश्रीजी के विचारो का सच्चा प्रतिबिम्ब है, एक निर्मल दर्पण है।

इस अलभ्य कृति को प्रकाशित करके श्रद्धेय कविश्रीजी की दीक्षा स्वर्ण-जयती के पुनीत अवसर पर उन्ही के श्री चरणो मे सभक्ति अर्पित करते हुए हम महान् गौरव की अनुभूति पा रहे है।

आशा है, सहृदय पाठक इस पुस्तक का हृदय से स्वागत कर जीवन के उज्ज्वल पथ पर प्रयाण करने की क्षमता अर्जित करेंगे।

मत्री
सन्मति ज्ञानपीठ
[जैन विद्या का शोध सस्थान]
लाहामण्डी, आगरा—२

गणतत्र दिवस,
सन् १९७० ई०

प्राक्कथन

काव्य कवि हृदय की उर्वर भाव-भूमि का प्रतिफलन है। कवि का हृदय इतना सरल, बालसुलभ भोलापन लिए हुए इतना सवेदन शील होता है कि ससार की प्रत्येक धडकनो को अपनी भावना-रागिनी मे सजोकर, जग-जीवन के बीच बडे ही साम्वेदनिक परिवेश मे प्रस्तुत करता है। इस क्रम मे कभी तो उसकी स्वय की आत्मानुभूत भावनाएँ विश्व की भावनाओ का स्वरूप लिए होती है, तो कभी विश्व की असख्य-असख्य भाव-लहरियाँ कवि की एक भावना मे एक मूच्छनामय आवेग लिए विलय होती-सी अपनी झाँकी प्रस्तुत करती हैं। ता पर्य यह कि कवि की भावनाएँ भावना की सामान्य भूमि पर उतर कर विश्व की सुख-दुख, हर्ष-शोक, अकुलाहट-आह्लाद, बद्ध-मुक्त—भावना की जितनी भी दिशाएँ है, सब को समान रूप मे धपटाती रूप मे छिटकती-निखरती स्वरूप पाती होती है। और, कवि-जीवन की सार्थकता भी इसी मे है।

'चिंतन के मुक्त स्वर' को कहे तो कोई अत्युक्ति न होगी। जो व्यक्ति कविश्रीजी के चिंतक, कवि, साधक, तपस्वी एवं एक महान् आत्मा—चाहे जिस रूप का भी दर्शन करना चाहेंगे, उनके लिए यह पुस्तक एक सफल गाइड (निदेशक) का काम करेगी। यह पुस्तक कविश्रीजी के विचारों का सच्चा प्रतिबिम्ब है, एक निर्मल दर्पण है।

इस अलभ्य कृति को प्रकाशित करके श्रद्धेय कविश्रीजी की दीक्षा स्वर्ण-जयंती के पुनीत अवसर पर उन्हीं के श्री चरणों में सभक्ति अर्पित करते हुए हम महान् गौरव की अनुभूति पा रहे हैं।

आशा है, सहृदय पाठक इस पुस्तक का हृदय से स्वागत कर जीवन के उज्ज्वल पथ पर प्रयाण करने की क्षमता अर्जित करेंगे।

मंत्री
सन्मति ज्ञानपीठ
[जैन विद्या का शोध संस्थान]
लोहामण्डी, आगरा-२

गणतंत्र दिवस,
सन् १९७० ई०

प्राक्कथन

काव्य कवि हृदय की उर्वर भाव-भूमि का प्रतिफलन है। कवि का हृदय इतना सरल, बालसुलभ भोलापन लिए हुए इतना सवेदन शील होता है कि ससार की प्रत्येक घडकनो को अपनी भावना-रागिनी मे सँजोकर, जग-जीवन के बीच बडे ही साम्वेदनिक परिवेश मे प्रस्तुत करता है। इस क्रम मे कभी तो उसकी स्वय की आत्मानुभूत भावनाएँ विश्व की भावनाओ का स्वरूप लिए होती हैं, तो कभी विश्व की असख्य-असख्य भाव-लहरियाँ कवि की एक भावना मे एक मूर्च्छनामय आवेग लिए विलय होती-सी अपनी झाँकी प्रस्तुत करती हैं। तात्पर्य यह कि कवि की भावनाएँ भावना की सामान्य भूमि पर उतर कर विश्व की सुख-दुख, हर्ष-शोक, अकुलाहट-आह्लाद, बद्ध-मुक्त—भावना की जितनी भी दिशाएँ हैं, सब को समान रूप मे धुपछाही रूप मे छिटकती-निखरती स्वरूप पाती होती है। और, कवि-जीवन की सार्थकता भी इसी मे है।

जाए किन्तु आदमी सिर फोडकर भी कवि नही बन सकता। यह तो जन्मजात प्रवृत्ति होती है।"

काव्य-रचनाओ को उनके स्वरूप की दृष्टि से तीन भागो मे विभक्त कर सकते हैं—(१) प्रबन्ध काव्य, (२) मुक्तक काव्य और (३) गीतिकाव्य। प्रबन्ध काव्य मे जहाँ सम्पूर्ण वर्णन किसी कथा-सूत्र से सम्बद्ध होता है, मुक्तक इससे कुछ भिन्न होता है। मुक्तक काव्य के प्रत्येक छन्द पूर्वापर सम्बन्धो से मुक्त अपने आप मे पूर्ण एव स्वतत्र होते है। गीतिकाव्य के गीति भी अपने आप मे पूर्ण होते हैं, किन्तु पूरा गीत एक ही भाव और एक ही लय मे अभिव्यजित होता है। अत मुक्तक-काव्य के समान उन्मुक्तता-स्वतत्रता किसी भी अन्य काव्य-स्वरूप मे लक्षित नही होती। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि "यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।" यह कथन मुक्तक की गहन एव स्वतत्र चिंतन तथा पूर्ण अभिव्यक्ति की गरिमा को व्यक्त करता है। वस्तुत प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली के समान व्यापक कथा-विस्तार एव विन्यास लिए होता है, वहाँ मुक्तक काव्य वस्तुत वनस्थली मे चुने हुए सुमनो का सज्जित गुलदस्ता ही है। जिस प्रकार सम्पूर्ण वन का सुमन ही उसकी सुषमा को विकसित करने मे समर्थ एव उसकी रमणीयता का प्रतीक होता है। उससे चुना हुआ गुलदस्ता जहाँ कही भी रख दिया जाए, विरानो

मे भी गुलशन का वहार ला देता है। कहने का अर्थ यह है कि मुक्तक सम्पूर्ण काव्यरूपो मे उसी चुने गुलदस्ते के समान मनोहर एव मनोरम होता है। इसमे जीवन का स्वतत्र चिंतन अपनी नानाविध झाँकियाँ प्रस्फुरित करता होता है। इसका अर्थ यह कदापि नही कि वनस्थली से चुने हुए गुलदस्ते के समान प्रवन्ध काव्य मे से चुने हुए छन्द मुक्तक कहला सकते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कहने का भी यह तात्पर्य नही। तात्पर्य तो यह है कि वनस्थली के वीच से चुने हुए गुलदस्ते का जो महत्त्व है, मुक्तक का भी वही महत्त्व है। मुक्तक काव्य की आत्मा है, कवि के चिंतन की उसकी अनुभूति मे स्पदित होने वाला धडकन है। कवि अपने चिंतन के अनुभूति-लोक मे भावना की उत्ताल-तरगो पर उठने वाली नाना भावनाओ को जव स्वतत्र एव उन्मुक्त शली मे अभिव्यक्ति करता है, वही मुक्तक का अभिधान होता है। इसमे कवि की चिंतन की आत्मा जीवन की धडकन वन कर स्पदित होती है।

सके।" किन्तु, डा० गुप्त का यह कथन सर्वथा मान्य नहीं हो सकता। यह मुक्तक काव्य के प्रति चिंतन का अधूरा स्पर्श मात्र है। मुक्तक काव्य के विषय मे श्री विश्वम्भर 'अरुण' ने बडा ही मार्मिक एव स्पष्ट कथन प्रस्तुत किया है। उन्होने कहा है—"मुक्तक काव्य मे सुविधा यह रहती है कि कवि एक ही भाव को विभिन्न भगिमाओ मे प्रस्तुत कर सकता है, अनेक भावो को प्रस्तुत कर सकता है। एक ही भाव अपनी अनेक छवियो मे व्यक्त हो सकता है, एक ही छवि अनेक भंगिमाओ मे प्रकट हो सकती है। एक ही भगिमा विभिन्न वानगियो मे सहृदयो को आकृष्ट करने मे समर्थ हो सकती है। प्रबन्ध मे विस्तार होते हुए भी उसकी गुजाइश कहाँ ? वहाँ तो कथा के विकास, चरित्र के प्रकाशन, रस की अन्विति आदि के इतने बधन और रूढियाँ हैं कि कवि सहजानुभूति को व्यक्त करने का अवकाश बहुत ही कम प्राप्त कर पाता है और इसीलिए वैसे काव्य को पढने का अवकाश पाठको के पास भी कम ही रहता है।"

सूझ, शैली, भावना एव कल्पना की मदिर-मूर्च्छनामयी सुरभि सम्पृक्त होती है। यही कारण है कि मुक्तक कवि वाणी मे फूटा-न-फूटा कि असख्य जिह्वाएँ गुनगुनाने लग जाती है झूमझूम कर उसे।

मुक्तक काव्य को सस्कृत के विद्वानो एव आचार्यों ने कई प्रकार से विभाजित किया है। आचार्य दडी ने मुक्तक के मुख्यत तीन भेद किए हैं—(१) मुक्तक, (२) कुलक कोष और (३) सघात। बाद मे इसके अनेक भेदोपभेद उपस्थित हो गये। विभिन्न विद्वानो ने इसके ९ भेद प्रस्तुत किए—१ मुक्तक २ युग्मक या सदानितक, ३ विशेषक, ४ कलापक, ५ कुलक, ६ कोश, ७ प्रघट्टक, ८ विकीर्णक एव ९ सघात या पर्याय-बन्ध। किन्तु ये भेदोपभेद आज मान्य नही है। आज तो मुक्तक अग्नि पुराणकार महर्षि व्यासदेव की आधारभित्ति पर ही मान्य है, जैसा कि उन्होने कहा है—"मुक्तक श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षम सताम्।"

डा० शम्भुनाथ सिंह ने बहुत कुछ सही आधार देते हुए विभाजित किए है। इनका वर्गीकरण प्रचलित मुक्तको का बड़ा ही समीचीन और सुन्दर वर्गीकरण है। जो निम्न प्रकार है—

१ संख्याश्रित मुक्तक काव्य—जैसे हजारा, सतसई, शतक, पचासा, बावनी, चालीसा, पच्चीसी, बाईसी, आदि।

हाल, अमरुक, गोवर्धनाचार्य आदि की रचनाएँ आती है (३) नीतिसम्मत मुक्तक काव्य—इसके अन्तर्गत भर्तृहरि आदि मुक्तककारो की रचनाएँ परिगणित की जा सकती हैं। हिन्दी मे भी यदि एक ओर कबीर, दादू, सुन्दरदास आदि ने धर्म एव वैराग्यपरक मुक्तको की रचनाएँ की तो दूसरी ओर बिहारी, मतिराम, देव, पद्माकर आदि ने शृगारपरक मुक्तको की परम्परा विकसित की। भतृ हरि के 'नीतिशतक' का विकास हम हिन्दी के कवि गिरिधर, वृन्द, रहीम आदि मे पाते हैं। शृगारिक मुक्तको को भी दो वर्गों मे विभाजित किया गया है—(१) रीतिबद्ध मुक्तक एव (२) रीतिमुक्त मुक्तक। इस प्रकार अद्यावधिपूर्व मुक्तको को निम्न वर्गों मे विभाजित कर सकते हैं—

(१) धर्म एव वैराग्यपरक मुक्तक—इसमे योगीन्दु, रामसिंह, देवसेन, जिनदत्त सूरि एव कबीर की सशक्त अभिव्यक्ति (मुक्तको) को रखा जा सकता है। बाद मे सूर, तुलसी आदि मे इसी परम्परा का भरपूर विकास हुआ।

(२) रीतिबद्ध मुक्तक—इस वर्ग मे केशव, देव, मतिराम, पद्माकर, ग्वाल, बिहारी एव विक्रम आदि कवियो की रचनाओ को रखा जा सकता है।

(३) रीतिमुक्त मुक्तक—इस परम्परा म घनानद, बोधा, आलम, रसखान आदि को रख सकते हैं।

(४) नीति मुक्तक काव्य—इसके अन्तर्गत वृन्द, गिरिधर, घाघ, वैताल आदि उल्लेखनीय हैं।

(५) वीररसपरक मुक्तक—इसमे पृथ्वीराज, बाँकीदास, दुरसाजी, सूर्य्यमल मिश्र एव महाकवि भूषण को स्थान प्राप्त है। इसके अतिरिक्त पद्माकर एव ग्वाल आदि ने भी कतिपय वीररसात्मक काव्य की रचनाएँ की है।

यद्यपि हिन्दी का मध्ययुग एक तरह से 'मुक्तक युग' ही है, पुनश्च, आधुनिक युग मे इसका कम विकास नही हुआ है। आधुनिक युग मे भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, नाथूराम शकर, अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध', रामनरेश त्रिपाठी आदि ने देशप्रेम एव राष्ट्रीय भावनाओ से ओत-प्रोत मुक्तको की बडी सुन्दर रचनाएँ की हैं। इसी शैली मे प्रसाद का 'आँसू' एव बच्चन की 'मधुशाला' आदि रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। आधुनिकतम प्रयोगवादी रचनाओ मे भी इस मुक्तक-शैली के दर्शन मिल जाते है, हाँ, इनमे हार्दिक सम्वेदना की जगह बौद्धिक सस्तरण अधिक पाया जाता है।

'चिंतन के मुक्त स्वर' मुक्तको के इस उपरिवर्णित विकासक्रमो की प्रतिनिधि पुस्तक है। इसमे शताधिक मुक्तको का संकलन है, जिनमे यह पुस्तक 'शतक' परम्परा को स्मृतिगत करती है, हालांकि इस पुस्तक के प्रणेता कविरत्न श्रद्धेय श्री अमरचन्द्रजी महाराज की

इस परम्परा मे प्रकाशित एक और पुस्तक 'अमर माधुरी' है, किन्तु इस पुस्तक का अपना विशेष गौरव है। गौरव इसलिए कि स्वनामधन्य कविश्रीजी के बीस वर्ष के चिंतनो की उन्मुक्त एव सहज स्फुरणाओ की अभिव्यक्ति-परक यह एक प्रतिनिधि कृति है। पुस्तक मुक्तक-काव्य को सामान्यत चरितार्थ करती है। जैसा कि मैने बताया, मुक्तक काव्य के अद्यावधि विकासक्रमो का प्रतिनिधित्व प्राप्त है—इसमे जहाँ एक ओर धर्म एव वैराग्य-परक मुक्तको की शृखला है, वहाँ दूसरी ओर स्तवन एव नीति का भी सम्यक् दर्शन होता है। जहाँ इसमे आध्यात्मिकता का वायवीय लोक बिम्बित है, वहाँ दूसरी ओर सामाजिकता एव राष्ट्रीयता की उद्दाम-उदात्त भावनाएँ भी सहज-मुखर हैं।

कविश्रीजी स्वय एक मनस्वी चिंतक हैं एक ओर, तो, दूसरी ओर भावनाशील, सरल कवि हृदय भी रखने वाले हैं। यही कारण है कि इनके समस्त मुक्तको मे इनका आध्यात्मिक व्यक्तित्व, युग की यथार्थ स्थिति की अनुभूति मे बध जाने मे एक महनीय आभा मे मडित हो उठा है। जहाँ इसमे एक ओर पूर्व पूर्वजो के प्रति श्रद्धा-भावना निहित है, दूसरी ओर वहाँ, परम्परा की जीर्ण-शीर्ण रूढियो को छिन्न-विच्छिन्न करने की एक स्वस्थ एव समीचीन परम्परा का उद्घोषक स्वर भी 'चिंतन के मुक्त स्वर' मे निनादित है।

समासरूप मे 'चितन के मुक्त स्वर' की कतिपय निम्न विशेषताएँ हैं, जिनके सम्यक् समाहार से पुस्तक की गरिमा सदा अक्षुण्ण रहेगी और पाठकवृन्द मे सदा समादार प्राप्त करती रहेगी।

१ इसमे विशेषकर ऐसे विषयो, प्रसगो एव भावनाओ पर चितन किया गया है, जिनकी आज के जीवन मे भी उपादेयता है, आने वाले युग मे भी रहेगी। जैसे, धर्म के प्रति अनुराग एव आस्था की प्रगाढ भावना, सामाजिक कुरीतियो पर तीक्ष्ण प्रहार—सामाजिक कुरीतियो पर हुए प्रहारो को देखकर तो बरबस कबीर का व्यक्तित्व हमारे सामने कविश्री जी के रूप मे समुपस्थित हो जाता है—जिसमे किसी के प्रतिविद्वेश प्रत्युत नही धर्म के यथार्थ की उद्घोषणा ही व्यजित है। राष्ट्रीय जागरण के साथ ही विश्वबन्धुत्व का महान् सदेश इस पुस्तक की अप्रतिम विशेषता है, जो कविश्रीजी की विशाल हृदयता, धर्मसहिष्णुता एव मानव-कल्याण कामना के रूप मे विश्वात्मा का प्रस्फुटित रूप हमारे सामने समूर्त हो उठा है।

२ शैली मे सजीवता, सुबोधता एव मार्मिकता है।

३ भाषा सरल, सुबोध, हृदय को छूने वाली एव सरस है। इसमे कोमलता एव प्रवाहमयता विशेष द्रष्टव्य है।

४ शब्द-योजना मे नाद-सौन्दर्य भी कही-कही लक्षित है।

५ कही-कही तो व्यग्य का ऐसा पुट है कि शिक्षा

बिंध जाए किंतु तीर कोई देखे, कोई देखे ही नही।

६ रस निष्पति का समाहार बडा सुन्दर है। प्राय शातरस की प्रधानता है। कही-कही वीररस एव भक्ति-रस के भी दर्शन होते हैं। हाँ, कही-कही, जहाँ उपदेशात्मकता की प्रधानता हो गई है, रस-परिपाक मे व्याघात उपस्थित हो गया है।

समासत यह एक अकेली पुस्तक 'चिंतन के मुक्त स्वर' कविश्रीजी के सम्पूर्ण जीवन के चिंतन के क्षीर से मथकर निकाला हुआ नवनीत है। इसमे कविश्रीजी के जीवन का सम्पूर्ण जीवन है, उनके चिंतन एव साहित्य तथा साधना का यह प्रतिनिधि सकलन है, ऐसा कहे तो कोई अत्युक्ति नही।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन का पूरा श्रेय श्रद्धेय अखिलेश मुनिजी महाराज को है, जिनकी गुण-ग्राहिणी सूझ ने कविश्रीजी के बीस वर्ष के चिंतन के सुमनो को एक तार मे पिरोकर इस रूप मे प्रस्तुत किया है। इनकी स्वय की सृजित कृति 'मगलवाणी' का सामान्य पाठको एव भक्तजनो मे इतना आदर हुआ है कि प्राय प्रत्येक वर्ष उसका नवीन सस्करण प्रकाशित होता है। यह उनकी प्रतिभा की गरिमा का द्योतक है। प्रस्तुत पुस्तक 'चिंतन के मुक्त स्वर' को एक सुन्दर रूप देने का जो मुनि श्री का प्रयास रहा है, वह सर्वथा स्तुत्य है। आशा है, भविष्य मे भी ऐसी ही महिमावान कृतियो का सपादन प्रकाशन कर

मुनिश्री अपने गौरव की अभिवृद्धि करेंगे ।

अन्त मे मैं इस पुस्तक के विषय मे यही कहकर समाप्त करना चाहूँगा कि 'चिंतन के मुक्त स्वर' किसी बँधी-बँधाई सीमारेखा के बीच न रहकर सीमाओ से मुक्त हो, अपने उन्मुक्त चिंतन का स्वर कोटि-कोटि कर्ण-कुहिरो मे भरकर जनमानस के बीच एक नई दिशा एव चिंतन तथा अकन का एक नया आयाम दे । जन-जन मे इसका समुचित प्रचार, प्रसार एव समादर हो, ऐसी मेरी शुभकामना है ।

आगरा,
गणतत्र दिवस '७०

—कलाकुमार

१

वीर ! तुम्हारे पद-पकज युग ,
इस धरती पर जिधर चले ।
कदम-कदम पर दिव्य भाव के ,
सुरभित स्वर्णिम पुष्प खिले ॥
हिंसा, घृणा, वैर के कण्टक ,
ध्वस्त बने पीडाकारी ।
जन-मन मे निष्काम प्रेम की ,
महक उठे केशर-क्यारी ॥
जो देवो का देव, देवता जिसके चरणो मे श्रद्धानत।
अनग के कण-कण से वन्दन उसी वीर को पल-पल सतत॥

●

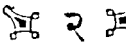

भोजनादिक दान मे उत्तम अभय का दान है,
सत्य मे निष्पाप करुणा-सत्य की ही शान है।
ब्रह्मचर्य महान् है-तपके अखिल व्यवहार मे,
ज्ञातनन्दन हैं श्रमण उत्तम सकल ससार मे ॥

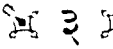

श्रद्धा स्वय स्फूर्त होती है,
स्वार्थ-स्फूर्त श्रद्धा, श्रद्धा क्या ?
स्वार्थ-मूल की श्रद्धा से तो,
अच्छी नही अश्रद्धा क्या ?

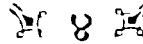

ईश्वर हो, या स्वर्ग, मोक्ष हो,
क्या अन्यत्र सुदूर कही है?
जो कुछ है, सो अपने मे है,
अपने से कुछ दूर नही है॥

●

दुर्जनो की जीभ सचमुच, ही नदी की धार है,
स्वच्छ-सम ऊपर से, भीतर भीम-भय-भण्डार है।
छेडिए उसको, कि जिसका शस्त्र तीर-कमान है,
पर, उसे मत छेडिए, जिसका कि शस्त्र जबान है।

●

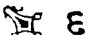

चिंतन की लौ दीप्त अगर है,
होगा ज्ञानोद्द्योत अमन्द !
बुझा दीप तम हर न सकेगा,
चाहे रचो कोटि छल-छन्द !!,

●

✻ ७ ✻

पर भाव मे रमता रहा,
निज भाव मे आया नही।
वद्धता का दुख झेला,
मोक्ष-सुख पाया नही॥
अपने स्वय के भाव की ही,
भूल, पर ससार है।
निज भाव की उपलब्धि ही,
वस मुक्ति-पद अविकार है॥
विश्व को पहचानने की,
धुन लगी है किस वला की।
आप को पहचानने की,
हो गई विस्मृत कला ही॥

●

॥ ८ ॥

एक धर्म हो, एक कर्म हो,
एक हृदय हो, एक विचार।
समतल हो साधक का गति-पथ,
अन्दर-बाहर एक प्रकार॥

●

एक-एक दीपक जुड़ने से,
दीवाली हो जाती जगमग !
एक-एक सद्गुण से जीवन,
होता जग-जन-पूजित पग-पग !!

●

एक धर्म हो, एक कर्म हो,
एक हृदय हो, एक विचार।
समतल हो साधक का गति-पथ,
अन्दर-बाहर एक प्रकार॥

●

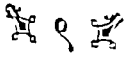

॥ १० ॥

सुनो मेरा अन्तःकरण,
रहना सदा ही ठीक पर।
देखा मैं अन्तःकरण पर,
ठीक रहती है प्यार॥

११

अकेला भूल करके भी,
नही अभिमान आता है।
भयकर सकटो का सघ,
अपने साथ लाता है॥

१२

जीवन की उत्तप्त धरा को,
स्नेह-सुधा से प्लावित कर दो।
व्यक्ति, जाति के अहभाव को,
धिक्कृत और तिरस्कृत कर दो॥

●●

१३

छोटे बनो तुम, सदा लघुता बडी है,
पाके गुरुत्व मिलती विपदा कडी है।
तारे सहर्ष नभ मे द्युतिमान होते,
पूर्णेन्दु के ग्रहण ज्योति-महत्त्व खोते ॥

●●

१४

शरम है बडी, लक्ष्य से फिर गए हो,
महावीर-आदर्श से गिर गए हो!
भला, पुत्र वे जग मे कैसे बडे हो,
पिता के विमल पथ से जो गिर गए हो!!

●●

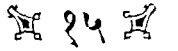

१५

जीवन कष्ट-कण्टकित है तो,
मानव! क्यों रोया करता है?
नव वसन्त का सुमन सुगन्धित,
काँटों में ही हँस-खिलता है॥

१६

हित, मित, सत्य मधुर मधु जैसी—
वाणी जहाँ सरसती है।
व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र मे—
सुख-सम्पत्ति बरसती है॥

●●

॥ १७ ॥

१८

भक्तियोग सर्वोच्च योग है,
अगर साथ हो उचित विवेक।
सर्वनाश का बीज अन्यथा,
अन्धभक्ति का है अतिरेक॥

१९

आत्मबोध के विमल स्रोत मे,
अन्तरतम को धोलो।
और सभी कुछ पीछे, पहले—
मन के बन्धन खोलो॥

●●

२०

ज्ञान कर्म के पख कट रहे,
मानव का हो रहा पतन!
अधम कीट-सा रेंग रहा है,
क्योंकर हो अब ऊर्ध्वगमन?

●●

२१

दीप जले हैं, दीपमालिका -
जगमग-जगमग करती है।
नयन-विमोहक स्निग्ध-ज्योति से,
निशि को द्योतित करती है॥
अधकार मे भटक रहे जन,
तुम प्रकाश वन जाओ।
ठोकर - खाते पथभ्रष्टो को,
सत्य - मार्ग दिखलाओ॥

२२

चतुर नर वही है विश्व मे कार्यकर्त्ता,
प्रथम हृदय मे जो सोच के बोलता है।
हत-मति नर पीछे सोचता, किंतु पूर्व,
स्व-मुख बिन विचारे श्वान ज्यो खोलता है॥

●●

२३

जितनी विकट समस्या उलझे,
जितने हो संकट के गर्जन!
उतना ही अच्छा होता है,
उष्णरक्त, पर, शीतल शुचिमन!!

●●

२४

धर्म न बाह्यभाव मे किंचित्,
बाह्योन्मुखता बंधन है।
आत्मभाव ही एक धर्म है,
जो सब बन्ध-विमोचन है॥

●●

विकार की कुत्सित कालिमा जमी,
विचार जल से अब साफ कीजिए।
महान् है दर्पण चित्त-शुद्धि का,
स्वरूप का सुन्दर दर्श लीजिए॥

२८

धर्म - पथ ढूढा नही,
'धार्मिक' हुआ तो क्या हुआ ?
आत्म - हित - चर्य्या नही,
'आस्तिक' हुआ तो क्या हुआ ?

●●

३०

जानकर भी पश्यत ,
प्रविनष्ट क्षण-भगुर जगत् ,
'मैं' का मद उतरा नही ,
'सौगत' हुआ तो क्या हुआ ?

●●

३१

विश्व का प्रत्येक प्राणी,
विष्णु का ही रूप है,
कार्य से झलका नहीं,
'वैष्णव' हुआ तो क्या हुआ?

३२

पाँच वक्त नमाज पढता, डर खुदा की मार से,
जुल्म से डरता नही, 'मुस्लिम' हुआ तो क्या हुआ ?
बन्धुता के भाव से नि स्वार्थ दुखियो का 'अमर',
दु ख दूर किया नही, 'क्रिश्चियन' हुआ तो क्या हुआ ?

●●

३३

सज्जन तो होते है चन्दन,
महक न निज कम करते है।
अग-विदारक खर कुठार का,
मुख सुगध से भरते है।

●●

३४

एक देवसम है मानव, जो–
मिलते ही सुख सरसा देता।
एक दनुज-सम है मानव, जो–
मिलते ही दुख बरसा देता।

●●

३५

जीवन मे सुख-दु खादिक का,
चक्र निरतर चलता है।
मानव-पद के गुण-गौरव का,
सफल परीक्षण करता है।

●●

३६

वीर पुरुष की सकट मे भी,
धर्म-भावना बढती है।
नीचे करने पर भी पावक-
ज्वाला ऊपर चढती है॥

●●

३७

सुख है, दुख पर, जब आता है,
सहन किया ही जाता है।
नर-जीवन मे धूप-छाँह सा—
सुख-दुख का चिर नाता है।

●●

३८

बाहर के सुख मे भी दुख की,
काली घटा उमडती है।
कभी बाह्य-दुख मे भी सुख की-
मधुमय धारा बहती है॥

●●

३९

मानव चाहे कितना ही हो,
उलझा विकट परिस्थिति मे।
अन्तर का उद्दीप्त तेज—
छिपता न विपद की हुँकृति मे।

●●

४०

लक्षाधिक नक्षत्र गगन मे,
निज-निज किरणे चमकाते।
किंतु कौमुदी शशि-मडल की,
फीकी तनिक न कर पाते॥

●●

४१

सम्मृति में जितने भी अच्छे,
कार्य कष्ट में साध्य सभी।
बिना अग्नि में पड़े स्वर्ण सा,
रूप दमकता नहीं कभी।

●●

४०

लक्षाधिक नक्षत्र गगन मे,
निज-निज किरणे चमकाते।
किंतु कौमुदी शशि-मडल की,
फीकी तनिक न कर पाते॥

●●

४२

आँधी के चक्कर मे टीले,
रेती के उड जाते हैं।
लेकिन अविचल उन्नत पर्वत,
कभी न हिलने पाते है॥

●●

४३

धन-वैभव पाकर भी सेवा-
अगर किसी की कर न सका।
दया-भाव ला दुखी-दिलो के-
जख्मो को जो भर न सका।
वह मानव अपने जीवन मे,
शाति कहाँ से पाएगा!
ठुकराता है, औरो को वह,
स्वय ठोकरे खाएगा!!

●●

४६

सुख के उजले सुन्दर वासर,
सकट की काली राते।
कट जाते है दिन-दिन वर्षों,
आश की करते बाते॥

●●

॥ ४७ ॥

आशा पर मानव-जीवन का,
पल-पल समय गुजरता है।
जीवन का बेड़ा आशा की,
लहरों पर ही चलता है॥

४८

वीणा के स्वर मद पडे क्यो,
अजर-अमर वह छेडो तान।
धरा-धाम से नील गगन तक,
गूँज उठे कण-कण मे गान॥

●●

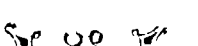

सागर-सम गभीर सज्जनो
का, होना है अन्तस्तल।
पी जाते है विष-वार्ता भी,
चित्त नही करते चचल॥

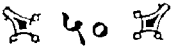

दुर्जन की क्या उलटी गति है,
हानि देखकर खुश होता।
हिम-प्रस्तर ज्यो धान्य नष्टकर–
खुद भी गलकर तन खोता॥

●●

५१

प्राणो की आहुति देकर भी,
दुखियो का करता कल्याण।
हानि देख पर की जो तडपे,
वही धरा का देव महान्॥

●●

५२

अखिल विश्व मे सबसे ऊँचा
जीवन, मानव-जीवन है।
मानवता ही सबसे वढकर,
अजर, अमर, अक्षय-धन है।

●●

५३

मानव-तन पाकर भी जो नर,
जीवन उच्च बना न सका,
समझो, चिंतामणि पाकर वह,
निज रक्तत्व मिटा न सका॥

●●

५२

अखिल विश्व मे सबसे ऊँचा
जीवन, मानव-जीवन है।
मानवता ही सबसे बढकर,
अजर, अमर, अक्षय-धन है।

●●

५३

मानव-तन पाकर भी जो नर,
जीवन उच्च बना न सका,
समझो, चिंतामणि पाकर वह,
निज रकत्व मिटा न सका॥

●●

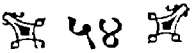

तू कर अपना काम, भले ही,
करे जगत पद-पद पर द्वन्द्व।
अर्थहीन संघर्ष-चक्र से,
रख नित अपने को निर्द्वन्द्व॥

●●

५६

सघन जलद सूखी खेती मे,
करता नव जीवन सचार।
वही पलक मे कृपक-काल हो,
करे मूल से सब सहार॥
विष-लव अणु-सा भी दिखलाता,
यमपुर का झट दुस्तर-द्वार!
किंतु बचा दुसाध्य रोग से,
बने वही जीवन - दातार!!

●●

५७

भला-बुरा एकान्त न कोई,
देखो जग में आँख पसार।
अखिल सृष्टि गुण-दोषमयी है,
किस पर करिए द्वेष और प्यार॥

●●

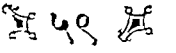

मनुष्य क्या, अदृष्ट की जो ठोकरें न सह सके,
मनुष्य क्या, जो सकटो के बीच खुश न रह सके।
मनुष्य क्या, विरोध के जो क्षुब्ध भीम-सिधु मे,
उठा के शीश शान से न लहर बन के वह सके॥

विश्व समन्वय अनेकात-पथ,
सर्वोदय का प्रतिपल गान।
मैत्री, करुणा सब जीवो पर,
विश्व-धर्म जग-ज्योति महान॥

५९

मनुष्य क्या, अदृष्ट की जो ठोकरें न सह सके,
मनुष्य क्या, जो संकटों के बीच खुश न रह सके।
मनुष्य क्या, विरोध के जो क्षुब्ध भीम-सिंधु में,
उठा के शीश गान से न लहर बन के बह सके॥

●●

६०

मनुष्य क्या, जो चमचमाते खजरो की छाँह मे,
मुस्कुरा के, गर्ज के न सत्य बात कह सके।
मनुष्य क्या, जो हाय-हाय करता-करता चल बसे,
दिखा प्रचण्ड आत्मतेज भीष्म-पथ न गह सके?
मनुष्य क्या, प्रलोभनो के पुष्पहार पाके जो,
हिमाद्रि शृ ग से भी उच्च अपने प्रण से ढह सके॥

●●

६१

क्रान्ति का बजा के सिहनाद घोर गर्जना से,
आलस्य हटा के देश सोते से जगाता है।
दीन-दुखी-दुर्बलो की सेवा की कठोर बलि-
वेदी पै सहर्ष भेट प्राणो की चढाता है॥
आँखो के समक्ष स्वय काल भी खडा हो क्यो न,
भीति नही लाता मन मेरु-सा बनाता है।
सादर समस्त जग-मण्डल से धूलि भरे-
अपने चरण वो ही वीर पुजवाता है॥

●●

६२

इस धरती पर वीर पुरुष ही,
नाम अमर कर जाते है।
कायर नर तो जीवन भर बस,
रो-रोकर मर जाते है॥

●●

६३

जहाँ पसीना पडे मित्र का,
अपना रक्त वहा डाले।
झेले अनगिन कष्ट स्वय पर,
सुखी स्वमित्र वना डाले॥

●●

६४

पशुबल आखिर पशुबल ही है,
कितना ही वह भीषण हो।
सत्य धर्म की टक्कर खाकर,
क्षण मे जर्जर, कण-कण हो।

●●

६५

बाधाओं पर विजय प्राप्त कर,
जो निज सत्य निभाता है।
नर में नारायण की पदवी,
वही जगत में पाता है॥

●●

६६

जहाँ सत्य का तेज, वहाँ पर-
त्रास नही कुछ भी होता।
दुर्बल पापात्मा ही भय का-
दृश्य देखकर है रोता।

●●

६७

अटल सत्य का पक्ष चाहिए,
फिर दुनिया मे क्या भय है?
मानव पर क्या, अखिल विश्व पर—
विजय अत मे निश्चय है॥

●●

६८

सत्य श्रवण की चीज नही है,
वह तो जीवन मे उतरे।
तभी वस्तुत उपयोगी हो,
जीवन 'अथ' से 'इति' सुधरे ।।

●●

६९

मात्र सत्य ही अखिल-विश्व में,
मानव-जीवन का वल है।
विना सत्य के सवल प्रवल भी-
तुच्छ सर्वथा निर्वल है॥

●●

७०

रक्तपात करना पशुता है,
मात्र भीरुता है मन की।
सज्जनता से अरि को वश–
करना है, शोभा सज्जन की॥

७१

छल-छद्म अनेक प्रकार रचे,
सदसत्य-विवेक विनष्ट भया।
सबके दिल मे बन शल्य चुभा,
न कदापि करी तिलमात्र दया।
मदमत्त बना महिपासुर-सा,
बस पीकर विषयो की विजया,
अपना-पर का हित साध सका,
कुछ भी नहि, व्यर्थ नृजन्म गया॥

●●

७२

आत्मज्ञान के बिना विश्व का,
अन्य ज्ञान सब है निःसार।
आत्म ज्योति को बिना जगाए,
कौन हुआ तमसा के पार?

●●

७३

राजमुकुट, धन, कंचन तजना,
सहज, न कुछ भी जोर लगे।
किन्तु मान-अपमान द्वन्द्व में,
त्याग-विराग तुरत भगे।

●●

७९

दुग्ध और जल-सी अभिन्नता,
जरा दुई का नाम नहीं।
प्रेम-पथ में स्वार्थ-हलाहल—
का तो कुछ भी काम नहीं॥

●●

७६

योगी जैसे प्राणिमात्र को,
अपने तुल्य समझता है,
शासक भी पर के सुख-दुख का,
भान हृदय मे रखता है ॥

●●

७७

लोक नही सुधरा है यदि तो,
कैसे सुधरेगा परलोक ?
यहाँ, वहाँ सर्वत्र स्वयप्रभ,
हो जीवन मे धर्मालोक।

●●

७६

योगी जैसे प्राणिमात्र को,
अपने तुल्य समझता है,
शासक भी पर के सुख-दुख का,
भान हृदय मे रखता है ॥

●●

७८

सच्चा मित्र वही जगती मे,
सर्व - श्रेष्ठ कहलाता है।
मैत्री के प्रण को जो 'अथ' से,
'इति' तक पूर्ण निभाता है।

●●

८०

दूध आग पर रखा हुआ है,
तपता और उबलता जो।
जल के छींटो से कब तक को,
शांति और शीतलता हो?

●●

८२

पुरुष कहाँ वे जो निज मुख से,
कहते थे सो करते थे।
अपने प्रण की पूर्ति हेतु,
जो हँसते-हँसते मरते थे॥

●●

८४

जीवन श्रेष्ठ, वही जीवन है,
जिसकी परिणति निज-पर-हित मे।
केवल निज, अथवा केवल पर,
ग्राह्य नही है जीवन-पथ मे॥

●●

८६

मेरा ईश्वर मेरे अन्दर, मैं ही अपना ईश्वर हूँ।
कर्त्ता, धर्ता, हर्ता अपने जग का, मैं लीलाधर हूँ॥
शुद्ध-बुद्ध, निष्काम, निरंजन, कालातीत सनातन हूँ।
एक रूप हूँ सदा-सर्वदा, ना नूतन, न पुरातन हूँ॥

●●

८७

जीवन का पथ पंकिल-पथ है,
सभल-सभल कर चलना।
क्षण-क्षण, पल-पल जागृत रहना,
हो न कभी कुछ स्खलना॥

●●

सुख-दुख दोनो क्षणभगुर है,
क्या हँसना क्या रोना ?
रहो अकर्म कर्मरत रहकर,
मन का कलिमल धोना ।।

●●

८९

परोपकारी बनना [illegible]
अमूल्य शिक्षा कुछ [illegible]
करो सभी सत्कर्म गुप्तता [illegible]
प्रसिद्धि का नाम न [illegible]
समस्त संसार प्रसुप्त [illegible]
यदा, तदा भू पर ओस [illegible]
निशा-निशा में कर [illegible]
प्रभात होते न कहीं निशानी।

सुख-दुख दोनो क्षण२
क्या हँसना क्या
रहो अकर्म कर्मरत
मन का कलिमल

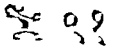

काम, क्रोध, छल, लोभ, अहं ही,
अंदर की पशुता है।
मानव-मन के सुधा-सिंधु की,
यही एक कटुता है॥

९२

ज्ञान - यज्ञ की ज्वालाओ मे,
बलि हो जब पशुता की।
मगलमय हो जीवन का पथ,
बहे धार मधुता की॥

●●

९३

जीवन का कण-कण मधुमय हो,
मधुरस क्षिति पर बरसाओ।
अन्दर मे अपने प्रसुप्ततम,
भाव सुदिव्य जगाओ॥

●●

९४

रोता आया मानव जग में,
अच्छा हो अब हँसता जाए।
और, दूसरे रोतो को भी,
जैसे बने हँसाता जाए॥

●●

९५

विगत हुआ मृत, उसका केवल,
अनुभव-रस वच रहता है।
जो भविष्य के विकट क्षणो मे,
ज्योति जगाता रहता है॥

❖ ९६ ❖

चलिए, आगे बढ़िए मुडमुड ,
मत पीछे की ओर देखिए !
निज-पर की अभ्युन्नति के हित ,
पद-पद स्वर्णिम स्वप्न देखिए !!

●●

९७

वर्तमान पर स्वर्णिम आभा,
गत गौरव की पडने दो।
फिर जन-जन को प्रगति-विरोधी,
बाधाओ से लडने दो॥

●●

❀ ९८ ❀

केवल भूत भूत रह जाता,
केवल वर्तमान नादान।
दोनों को मिलकर वनने दो,
जन भविष्य का स्वर्ण विहान!!

●●

९९

नये समय की स्वर्णिम आभा,
काल क्षितिज पर चमक रही।
द्रुत चरणो से बढकर आगे,
आओ, तुम्हे पुकार रही॥

●●

१००

भूत हुआ मृत, अब न उठेगा,
उसको मुडमुड मत देखो।
वर्तमान के कर्म-केन्द्र से,
नित नव भव्य-भविष्य देखो॥

●●●

१०१

आँखो मे हो तेज, तेज मे सत्य, सत्य मे ऋजुता।
वाणी मे हो ओज, ओज मे विनय, विनय मे मृदुता॥
सत्कर्मो मे लगन, लगन मे शौर्य, शौर्य मे करुणा।
सत्पुरुषो के ये ही गुण है, गाती महिमा वरुणा॥

●●●

१०२

आँख खोल कर देखो-परखो,
करो न वद बुद्धि के द्वार।
छिन्न-भिन्न कर दो तमसावृत,
रूढिवाद का कारागार॥

●●●

१०३

प्रगति राष्ट्र के जीवन - तरु की,
है उद्योग प्रगति पर निर्भर।
किंतु वही उद्योग हितकर,
जिसमे बहे अहिंसा निर्झर॥

●●●

१०४

दीपक क्या कहता है सुन लो–
'मुझे करो तुम स्नेह प्रदान!
ज्योति जगा दूंगा अग-जग में,
बिना स्नेह, मृत तन-मन-प्राण!!'

●●●

१०५

नीरस मन क्या करे विचारा,
भटका - भटका रहता है।
हँसता है, खिलता है तब, जब,
रस - धारा में बहता है॥

●●●

१०६

शास्त्र वही जो जन-जीवन मे,
ऋत की ज्योति जगाता है।
शास्त्र नही वह, जो जडता का,
अधकार फैलाता है॥

●●●

१०७

मनुज मात्र की जाति एक है,
कोई ऊँच न कोई नीच।
उठता-गिरता रहता प्राणी,
सदसत् कर्मचक्र के बीच॥

●●●

१०८

नर-नारी के भेद देह के,
आत्म-ज्योति इन सब से भिन्न।
शुद्ध, बुद्ध हो सकते दोनो-
कर निज मोह-पाश विच्छिन्न॥

●●●

१०९

अपनी अच्छी-बुरी सृष्टि के,
स्रष्टा तुम हो स्वय महान।
जो चाहो, सो बन सकते हो,
लो अपने-पन को पहचान॥

●●●

११०

हर नर मे नारायण सोया,
छिपा बिन्दु मे सिन्धु विराट्।
जो सोता वह क्षुद्र जीव है,
जागृत जन ईश्वर विभ्राट्॥

●●●

१११

जैसे तुम हो, वैसे सब है,
चेतन-चेतन सब है एक।
दुःख एक को अप्रिय है, तो,
सबको अप्रिय, करो विवेक॥

●●●

११२

दिव्य देशना की ज्वाला मे,
जले अधतम का ससार।
भस्म बने अज्ञान दभ के,
कूडा-करकट का अबार॥

●●●

११३

तपता-जलता-भुनता भीषण,
मरु जैसा है यह ससार।
मैत्री-करुणा की वहती इक,
निर्मल, शीतल मधुरस धार॥

●●●

११४

घृणा-वैर का विष पी-पीकर,
मरता-गिरता मनुज अबोध।
शाश्वत जीवन का अमृत-रस,
मैत्री करुणा का उद्‌बोध॥

●●●

११५

समता से हित साध सके जो जन-जीवन का,
दुख-दारिद मे सदय, सहायक दीन हीन का।
साधु-मत का सेवक, साधक धर्म-ध्यान का—
सपति वही पुनीत, यही गौरव धनपति का॥

●●●

११६

सरिता की धारा मे निशिदिन बहता-बहता,
ठोकर खाते शिला-खड को भी ज्यो मानव-
देव मानकर पूजा करता, शीश नवाता,
जनहित, जन मे भाव यही, भगवान् बनाता।

●●●

११७

'प्राणिमात्र प्रभु के बेटे'—यह धर्म-कथन है,
प्राणि-प्राणि मे यही भाव, समता का धन है।
समता के इस बधुभाव पर धर्म टिका है—
बधु भाव ही अत विश्व का सत्य परम है॥

●●●

११८

ऊर्ध्वगमन सोपान विश्व यह, पावन-पथ का,
मानव-तन आधान, पुण्य यह जनम-जनम का।
शुचिता का सधान अगर नर कर न सके तो—
यही बड़ा दुर्भाग्य मनुज का, मानवपन का॥

●●●

११९

सत्य सत्य है, सदा सत्य है,
उसका नया-पुराना क्या ?
जब भी प्रकट सत्य की स्थिति हो,
स्वीकृति से कतराना क्या ?

●●●

१२०

सत्य सत्य है, जहाँ कहीं भी-
मिले, उसे अपनाना है।
स्व-पर-पक्ष से मुक्त सत्य की,
निर्भय ज्योति जलाना है।

●●●

१२१

कोई बढ़ता है तो उसको बढ़ने देना,
वैभव के शिखरों पर हँस-हँस चढ़ने देना।
मन की ज्वाला को मन में ही सदा शमित कर-
जो आता है काम, वही जीवन जीवन है॥

●●●

१२२

असहायो दुखियो से जो है बच-बच चलता,
दलितो-दीनहीनो से है जो नफरत करता,
जो कटुता की, द्वेष भाव की आग जलाता—
वही सृष्टि की भूल, शाप है मानवता का ।।

●●●

१२३

अंधियारे का दीप स्नेह बन,
महातपन का शीत सदय बन।
मरुथल में जो रस छहराए-
वही जीवन अभिराम महान॥

●●●

१२४

घृणा घृणा से, वैर वैर से,
कभी शांत हो सकते क्या ?
कभी खून से सने वस्त्र को,
खून ही से धो सकते क्या ?

●●●

१२५

क्षमा, शांति, सद्भाव, स्नेह की,
गंगा की निर्मल धारा।
गहरी डुबकी लगा हृदय से,
धो डालो कलिमल सारा॥

●●●

१२६

सुन्दर तन हो, सुन्दर मन हो,
सुन्दर वाणी, सुन्दर कर्म।
जीवन का कण-कण हो सुन्दर,
स्व-पर हितकर सुन्दर धर्म॥

●●●

१२७

नगर-नगर मे, ग्राम-ग्राम मे,
घर-घर मे, मधुरस बरसे।
फूल बने काँटे हर मग के,
सूखा जन-जीवन सरसे॥

●●●

१२८

आदिनाथ के हम वशज है,
शुचिता, समता पर्व हमारा।
वधु-वधु हम सब प्राणी है-
यही भाव, सर्वस्व हमारा॥

●●●

१२९

हो जाए यदि भूल भाई से,
आत्म-धर्म की भूल-भ्रमों से।
स्नेह-छाँव फिर भी दे, उर ले-
क्षमापणा का अमिय पिला दे॥

●●●

१३०

निज-पर का सब भेद भुलाकर,
विश्वभाव की ज्योति जगा ले।
कटुता, कल्मष, वैर भाव के—
अन्तर् मल को आज मिटा ले।

●●●

१३१

सब प्राणी सम, एक हो सकें,
वैर-भाव का भेद खो सकें,
दंभ-द्रोह का कल्मष खो दें-
क्षमा-विनय से हृदय सजा लें॥

●●●

१३२

क्षमा शांति का हृदय द्वार है,
क्षमा भक्ति का सुमन हार है,
क्षमा दिव्य ऐश्वर्य सृष्टि का—
क्षमा मनुज का दान अभय है।
क्षमा हृदय की दिव्य ज्योति है,
क्षमा सृष्टि का वह मोती है,
जिसको पा, कुछ शेष न पाना—
वसुधा भी धन-धन होती है।

●●●

१३३

भीमकाय उत्तुंग शिखर-सा खडा पुरुष है,
रोम-रोम प्रज्वलित शिखाएँ दग्ध-उत्स है,
कलमल-कलमल जीव-जगत् का प्राण जल रहा,
ऐसी तापतपित ज्वालाएँ मूर्त, मुक्त हैं।
त्राहि-त्राहि कर प्राण-प्राण सब बिदर रहे है,
रोम-रोम भयत्रस्त, जीव सत्र सिहर रहे है,
अकुलाने-बिललाने से पर, शाति कहाँ है?
परम-वीर प्रभु चरण-छाँव छू, श्रान्ति-अभय है।।

●●●

१३४

यदि विवेक की ज्योति न
अधकार अति अधका·
उग्र, उग्रतम क्रियाकाड
बुझे दीप-सा मत्र असार

१३५

चन्दन, सुमन आदि की जितनी,
सुरभि विश्व मे मृदु-सुन्दर है।
शीलधर्म की अक्षय मोहक,
सुरभि श्रेष्ठ सबसे बढ़कर है॥

●●●

१३६

ज्ञानदीप जब जगमग करता,
शुभ्र ज्योति से हर क्षण ज्योतित।
राग-द्वेष के तिमिराचल को-
भेद, कर्मपथ हो आलोकित॥

●●●

१३७

जीवन यह स्वर्णिम प्रयाण है,
सत्य-धर्म, शुचिता सबल लो।
अन्तर की अघ-कलुष-कालिमा
करो दूर, ज्ञान का बल लो॥

●●●

१३८

अखिल विश्व यह महा सिंधु है,
जीवन, डुबकी जो ले पाता।
जो जितना चेतन हो डूबे,
वह उतना मोती ले पाता॥

●●●

१३९

जीवन जग का तपन धाम है,
प्राणी उसमे तपने वाला।
जो जितना तप सके तपन मे,
वह उतना कुन्दन उजियाला॥

●●●

१४०

जीवन-मग उलझी पथ-रेखा,
ज्ञान-किरण ले बढो बटोही !
निज-पर का क्या भेद सँजोना ?
अखिल भाव का, बन आरोही !!

●●●

१४१

जीवन का हर पथ हो जाए,
सत्य-ज्योति से जगमग-जगमग।
अन्धकार से मुक्त चतुर्दिक्,
हो जाए जन का अन्तर्जग॥

●●●

१४२

मिला मनुज-तन धन्यभाग है,
अंतर का दीप जला मानव !
बीत न जाए स्वर्णिम प्रभात,
तू जीवन-ज्योति जगा मानव !!

●●●

१४३

आप आप ही जीने वाला,
मनुज नही, वह पशु प्राणी है।
खुद जीये, परहित जो सोचे,
वही मनुज है, कल्याणी है॥

●●●

१४४

ओ, अतीत की गहन तटी मे रमने वालो !
मुक्तद्वार पर रमती ज्योति-शिखा पहचानो !
मृत अतीत पर झख झखकर क्या रोना पलपल—
वर्तमान की माग सुनो, जीवन सजानो !!

●●●

१४५

जरा खोल दो नयन ज्ञान का,
नर-तन का शुचि मान बढा लो।
यह धरती आधार मात्र है-
जीवन-पथ अभिराम बना लो॥

●●●

१४६

जीवन का आधार न मन रे।
जीवन की मंजिल होती है।
कहीं दूर गुलशन में महमह-
जीवन की महफिल होती है॥

●●●

१४७

हँस लो स्वय, हँसा लो पर को,
अमर प्रेम-मणि-दीप जला लो!
अन्तर की शुचि-सुरस-धार से—
जग-मरुथल सींचो लहरा दो!!

●●●

१४८

विश्व भाव मे हृदय मिला लो,
स्वात्म-भाव से जगत खिला दो !
वही 'अर्ह' का स्वर फूटेगा—
मानव, मन-सागर लहरा लो !!

●●●

१४९

भला साधु वह है जो दिल का भला है,
उपरि भेष खाली तो, खाली बला है।
विषय-भोग जग के उसे क्या डिगाएँ,
अटल मेरु-साँचे जो पूरा ढला है॥

●●●

१५०

प्रशसा व निन्दा की चिन्ता न बिल्कुल,
अचल सत्यनिष्ठा लिए बावला है।
डराए कोई नग्न खजर दिखा के,
कहे, हँस के 'लीजे यह नश्वर गला है'॥

●●●

१५१

तजे सर्व रंजन, विरागी बना है,
स्व-पर हित का संकल्प लेकर चला है।
बनो साधु ऐसे, नहीं तो ठगों का,
लुटेरों का यह भी नया काफला है॥

१५२

जीवन की सरिता वहती है,
आगे, आगे, आगे।
जो लौटाते है पीछे को,
वे है निरे अभागे॥

●●●

१५३

भूतों के पग पीछे होते,
मानव के होते आगे।
बढ़े चरण जब द्रुत भविष्य पर,
सुप्त भाग्य तब जागे॥

●●●

१५४

पर-निन्दा, पर-अपवादो के-
परनाले मे क्या तन धोता ?
क्यो न प्रेम के अमिय-धार मे-
तन-मन धोकर उज्ज्वल होता !

●●●

१५५

छोड़ो मन का मोह पुराना,
नव की नवल ज्योति मे आओ।
घोलो अपना मैल कषाना,
जीवन को नव पथ दिखाओ॥

●●●

१५६

बीत रहा है वर्ष पुराना,
नूतन का नव द्वार खुल रहा।
करो विदा गत को, आगत का—
स्वागत, क्यों कर मन भूल रहा?

●●●

१५९

परिवर्तन की मधुवेला मे,
आया है नव वर्ष ज्ञान से।
छोडो मोह पुरातन मृत का,
नव का स्वागत करो ध्यान से॥

●●●

१५८

मिल जाए यदि ज्ञान-सूत्र तो—
उसको हृदय खोल अपना लो।
नवचिंतन का, नव विचार का,
नूतन स्वर्णिम दीप जला लो।

●●●

१५९

परिवर्तन की मधुवेला मे,
आया है नव वर्ष शान से।
छोडो मोह पुरातन मृत का,
नव का स्वागत करो ध्यान से।।

●●●

१६०

चिंतन का नव द्वार खुल रहा,
मानव ! मन का दीप जला लो।
मगल उदित हुआ प्राची मे,
विश्व - बधुता - प्रीत पगा लो !!

●●●

१६०

चिंतन का नव द्वार खुल रहा,
मानव ! मन का दीप जला लो।
मगल उदित हुआ प्राची मे,
विश्व - बधुता - प्रीत पगा लो !!

●●●

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
मो लोएसव्वसाहूणं

त्व से प्राण, परमेष्ठी की शरण लो, मिले भवों से न
पल मीत , पग पग पर मगल मिले, क्षण क्षण हो कल्य

ता के सांस्कृतिक पर्व होली पर,
ल्ली की हार्दिक शुभकामनाएं !